नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका □ वर्ष-5 □ अंक-५ □ मुम्बई □ मे-2014 □ मूल्य-रु.9/-

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के महामन्त्री श्री संगीत आर्य द्वारा श्रीमती लीलावती महाशय आर्य महिला पुरस्कार से आचार्या श्रीमती सविता आनन्द जी को देहरादून गुरुकुल में जाकर सम्मानित किया गया । उस अवसर पर लिए गये कुछ चित्र

आओ हे आत्मन् आओ

-ललित मोहन साहनी

क्वेयथ क्वेदसि पुरूत्रा चिद्धि ते मनः
अलर्षि युहम खजकृत पुरन्दर प्रगायत्रा अंगासिषुः ।।ऋ ८.१.१)
साम. २११.

तर्ज: सांझ भई अब आजारे

देर भई घर आजारे राजा (२)
दिन तो डूबा डूबना जाए
आस का सूरज आजा रे
।। देर भई ।।

राह रोकती है ना समझी जूझें हम किनकिन से
राग द्वेष दम्भ लग गये पीछे पाप जुड़े तनमन से
मति भरमाई क्या बतलायें तू ही ये बतलाजा रे।।
।। देर भई।।

सुनना चाहूँ आहट तेरी दुर्दशा सूने पन की
प्राण इन्द्रियाँ मन बुद्धि को, ढूँढ है तुझ साजन की
काँपती पलकें बाट निहारे (२) आ इस राष्ट्र के राजा रे।।
।। देर भई।।

इन असुरों को मार भगाओ लोहा लो चुनचुन के
देह-राज्य का करो नियन्त्रण कष्ट व्यथा सुन सुन के
छोड़ ना जाना यू अन्जाना हे आत्मन ! करो बादा रे।।
।। देर भई ।।

यूँ तो हम आशावादी हैं और महत्वाकाँक्षी
किन्तु तुझ बिन हम सुधबिन हैं बातू है बिलकुल साँची
सुन उद्बोधकगीत हमारे सुन सुन के अब आजा रे।।
।देर भई ।।

(दम्भ)- घमंड
(साजन)- प्यारा (आत्मा)
(महत्वाकाँक्षी)- ऊँची अभिलाषा
(उद्बोधक)- उद्दीपक, जागृत करने वाला
(अन्जाना)- अपरिचित
(सुधबिन) - चेतना रहित, अचेतन

उद्धार का मार्ग

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्ये
अग्निमीधे विवस्वभिः ।। ऋग. ८.१०२.२२ साम १९८ (१.१.२.९)

तर्ज: भज मन भज मन सदा हरि का नाम

यज्ञकर यज्ञकर कर्म तू कर निष्काम
उसकी दया से बन जाएगा तू भी अग्नि-समान
।। यज्ञकर ।। ....

जो भी प्रतिदिन अग्नि जलाकर अग्निहोत्र रचाये ।
अग्नि जैसे गुण जीवन में यज्ञ के साथ जगाये ।
आत्मज्योति फिर क्यूँ ना जागे क्यों ना बने तू महान?
।।यज्ञकर।। ....

बाह्य यज्ञ कर के अन्दर का यज्ञ तू कर ले धारण
बाह्य यज्ञ से शतगुण बेहतर अन्तर्मन का क्षालन
कर प्रदीप्त इस आत्मग्नि को कर मेधावी काम।।
।।यज्ञकर।। ....

आत्म निरीक्षण आत्मिक चिन्तन सदविचारवत कर्म
जाप धारणा ध्यान समाधि है आत्मा का धर्म
तमो निवारक ज्ञान-रश्मियाँ बनेगी तारक त्राण।।
।।यज्ञकर।। ....

सूर्य रश्मियों से संसार की ज्योति होती प्रबुद्ध
सत्यज्ञान-उपदेष्टा करते वेद-सूर्य से शुद्ध
कर लूंगा में प्रति दिन उज्जवल कर्म मनोरथ ज्ञान।।
।।यज्ञकर।। ....

निष्काम= कामनारहित
शतगुण= शुद्धकरना, क्षालन - शुद्ध करना
मेधावी= तीव्रधारणा शक्तिवाला, विद्वान, पण्डित
तम= अन्धकार
प्रबुद्ध= चैतन्य, खिला हुआ
त्राण= रक्षक
उपदेष्टा= उपदेश करने वाला
रश्मि= किरण

आर्य समाज सांताक्रुज, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ५ अंक ५ (मे-२०१४)

- दयानंदाब्द : १९१, विक्रम सम्वत् : २०७०
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११५

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क
- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन
रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-
चैक /डीडी / मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.),
मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
आओ हे आत्मन् आओ/उद्धार का मार्ग	२
सम्पादकीय	३
तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु	४
ब्रह्मज्ञान क्या है?	५
पाप और पुण्य	६-८
गैस की समस्या है, तो खाएं लौकी	८
तीन प्रकार के पाश	९
आर्य युवको! नेता नहीं, सेवक बनो	१०
हमारे योद्धा अग्नि के समान तेज वाले....	११
ओ३म् नाम	१२-१३
मृत्यु से बचने का ढंग	१४
हनुमानादि बन्दर नहीं थे?	१५
रन फोर विजडम/गुरुकुल विश्वविद्यालय,...	१६

सम्पादकीय

अस्तित्व

महर्षि दयानन्द सरस्वती की महति कृपा से विलुप्त एवं पथभ्रष्ट होती जा रही आर्य संस्कृति को उन्होंने नव चेतना दी। वैदिक धर्म ही आर्यावर्त राष्ट्र का धर्म था। वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म उन्होंने बताया। आर्य समाज की स्थापना भी मूलत: वेद के प्रचार-प्रसार के लिये ही की थी। महर्षि के इन्हीं दिशा-निर्देशों से उत्साहित होकर आर्य समाजियों ने सामाजिक, राजनितिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी एवं सत्य पर आधारित विचार विश्व के सामने रखे। परिणाम स्वरूप आर्य समाज एक क्रान्तिकारी संगठन कहलाया। महर्षि के अनुसार शारीरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग पर चलकर आर्यो ने राष्ट्र में समग्र परिवर्तन लाने का प्रयास किया। इसके परिणाम भी उस समय दिखे। गुण-कर्म- स्वभाव अनुसार अन्तर्जातीय विवाह को आर्य समाज ने ही स्वीकृति दी। वर्ण व्यवस्था जन्मगत् न होकर कर्मानुसार होने की बात मनु महाराज ने की थी। इसे महर्षि ने प्रतिपादित किया। प्रगतिशील देशभक्तों ने आर्य समाज के इस स्वरूप को सम्मान के साथ स्वीकार किया। परन्तु यह क्रान्ति और वेद मार्ग पर लौटने की दिशा ने कई स्थापित अवैदिक मान्यताओं, मूर्तिपूजा, वर्णवाद जैसी वेद- विरूद्ध बातों के ठेकेदारों को अपने सामने खड़ा पाया। यही सब शक्तियां आज आर्य समाज में शनै: शनै: अपने पैर फैलाकर आर्य समाज के अस्तित्व के लिये खतरा बनते जा रहे हैं। शिव मन्दिर में शिव की ही पूजा होगी, गणेश के मन्दिर मे गणेश की ही पूजा होगी, इसी प्रकार आर्य समाज मन्दिर में हवन और वेद का स्वाध्याय ही होगा। आर्य समाज व्यक्तियों के हृदयों में, वेद-ज्ञान बढ़ाने से, शारीरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक उन्नति से ही सुरक्षित रह सकता है। इसे यदि हमने कमजोर कर दिया तो फिर वह दिन दूर नहीं जब अलग-अलग संप्रदाय के लोग सिर्फ चन्दा भरकर आर्य समाज के सदस्य बनने लग जायेंगे और संपत्तियों पर कब्जा करके आर्य समाज के मूल स्वरूप को ही शनै: शनै: खत्म करने का प्रयास करने लगेंगे। आओ ! आर्य समाज में हवन, वेद-स्वाध्याय और शारीरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक उन्नति के कार्यों में ही अपनी समग्र शक्ति लगायें और आर्य समाज के अस्तित्व के अमिट बनायें।

- संगीत आर्य- 93235 73892

तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु

– यशबाला गुप्ता

कबीर का दोहा 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत' निराशा में डूबी मानवता के लिए दीप स्तम्भ है। भयंकर बीमारियों से ग्रसित व्यक्ति या भयंकर दुखों में डूबा व्यक्ति भी इन पंक्तियों को विचारते ही अद्भुत शक्ति का अनुभव करने लगता है। जो मन से कमजोर हो जाता है वह तो जीवित रहते हुए भी मृतक है। इन पंक्तियों में वह चुम्बक शक्ति है जिसके पास आते ही विपरीत परिस्थितियां अनुकूल हो जाती हैं। इनमें विश्वास उस कामधेनु की तरह है जिसको पाकर कुछ पाने को शेष नही रहता। इनकी शक्ति उस चिराग की तरह है जिसके जलने से अंधकार स्वयं भाग जाएगा। सफलता को पाना है तो मन को मजबूत बनाना होगा। कोई भी जन्म से महान नहीं होता, कुछ कर पाने की इच्छा शक्ति को दृढ़ बनाकर ही मनुष्य सफलता के सोपान पर चढ़ जाता है। वेद में भी बार बार ईश्वर से प्रार्थना की गई है 'तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु – हे ईश्वर मेरा मन शुभ, धार्मिक कर्म, आनन्द व भलाई के लिए संकल्प वाला हो।'

जिसने मन को कमजोर बनाया उसकी इच्छा शक्ति भी कमजोर हो जाती है। वह लापरवाह और आलसी बन जाता है और एक बार यदि वह हिम्मत हार जाता है तो ऊपर उठने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है। जो कठिनाइयों से भिड़ता है, मैदान में गिरकर उठता है, साहस का पल्ला नहीं छोड़ता वही जीवन में कुछ कर सकता है। ऋग्वेद में लिखा है 'स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युद्धये भूयसश्चित्' जिसका भाव है : हे इन्द्र, यदि तू समर्थ होकर मन को स्थिर करे तो तू अकेला ही बहुतों से युद्ध जीत सकता है। मन के द्वारा विजय तो तभी हो सकती है जब मन किसी एक स्थान पर ठहरे। अत: मन को स्थिर करो। और गीता में भी कहा है–

'चंचलं हि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम।
तस्याहं निग्रहं मन्ये–वायोरिव सुदुष्करम्।।'

हे कृष्ण! मन बहुत चंचल है, उधेड़बुन करने वाला बलवान तथा हठी है। वायु को वश में करने के समान उसका निग्रह अत्यन्त दुष्कर है, कठिन है।

संसार के सभी व्यवहारों के लिए मन की स्थिरता अपेक्षित होती है। मन की शक्ति के सम्बन्ध में वेद में कहा है।

'यस्मान्न ऋते क्रियते किंचन कर्म– जिसके बिना कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता।' (यर्जु) आंख देखती है किन्तु मन के सहयोग से। कान सुनता है मन के सहयोग से। जिस इन्द्रिय के साथ मन का सहयोग न हो वह कार्य नहीं कर सकती। ऐसे महाबली मन को ठहराना ही चाहिए।

मन को दृढ़ बनाने में चिन्तन, लगन व अध्यवसाय अत्यन्त सहायक हैं जिसके लिए विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं हैं। मन निरन्तर अभ्यास के किसी भी अवस्था का सामना कर सकता है। जब मनुष्य स्वावलम्बी हो जाता है फिर उसके शब्दकोष में निराश शब्द नहीं रह जाता और उसकी सारी समस्याएं छू मन्तर हो जाती हैं, उसे अपनी बुद्धि और हाथों पर अटूट विश्वास हो जाता है और वह अपने अमूल्य जीवन को नष्ट नहीं होने देता है।

गीता में कृष्ण भगवान के जो उपदेश हैं उनमें स्वावलम्बन की गुरुता झलकती है और सच ही है जो अपनी सहायता आप करता है, भगवान भी उसी की सहायता करते हैं।

मन को दृढ़ बनाने के बाद भी यदि व्यक्ति असफल होता है तो वह गम्भीरता पूर्वक विचार करता है। वह भाग्य को नहीं कोसता बल्कि अपनी कमी को ढूंढ़ता है जिससे उसे असफलता का मुंह देखना पड़ा है और वह पुन: नए सिरे से प्रयत्न करने लगता है। इतिहास बताता है कि महाराणा प्रताप भी अपनी बेटी को घास के निवाले के लिए बिलखता देखकर डांवाडोल हो गए थे और दुश्मनों के सामने हथियार डालने वाले थे किन्तु तभी एक मकड़ी ने जो कि छ: बार नीचे गिर कर सातवी बार दीवार पर चढ़ने में सफल हो गई थी उनकी विचारधारा को बदल दिया और वे पुन: दुश्मन से लोहा लेने के लिए जूझ पड़े व सफलता पाई।

भूल कर भी कभी मन में नकारात्मक विचार मत लाओ। अगर कभी सोच रहे हैं तो अपने भविष्य को सुन्दर, सफल ही देखो फिर मन आपके विचारों को पूरा करने में लग जाएगा। सैकड़ों वर्षों से ऋषि मुनि मन की शक्ति पर जोर देते है। डाक्टर भी मनोबल की शक्ति को जगाने के लिए प्रेरित करते हैं। इसी मनोबल से अपनी बुरी आदतों से छुटकारा पाया जा सकता है। शराब, सिगरेट, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार सब कुछ छोड़ा जा सकता है बस जरूरत है मन को संयमित करने की और अपने इरादों पर दृढ़ रहने की। देखिए जीवन के प्रति आपका रवैया एकदम बदल जाएगा और आप निश्चिन्त जीवन जी सकेंगे।

सम्पर्क : ४९/३ लिंकिंग रोड, एक्सटेंशन, मुम्बई–४०० ०५४.

समाचार

वैदिक मिशन मुम्बई के मन्त्री श्री संदीप आर्य पिछले माह लडंन के दौरे पर गये हुए थे। इसी बीच ३० मार्च २०१४ को उन्हे आर्य समाज इलींग, लंदन जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहां उन्होने अपने व्याख्यान भी दिए। उन्होने बताया कि किस प्रकार मन्त्र हमारे तन, मन व आत्मा पर प्रभाव डालते हैं। मन्त्र जाप हमारे जीवन को उज्जवल बनाते है। नाना प्रकार के मन्त्र हमारे कुसंस्कारों को भस्म करके शिव संकल्पो को उद्दीप्त करते हैं। तत्पश्चात संदीप आर्य के पुत्र श्री योगेश आर्य के मनमोहक व हृदय स्पर्शी भजन भी हुए। कार्यक्रम के अन्त में उस सभा के मन्त्री श्री भारद्वाज जी ने सबका धन्यवाद किया।

ब्रह्मज्ञान क्या है?

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

एक दिन भगवान् कृष्ण के पास नारद जी आये; बोले- ''भगवन्! मैं ब्रह्मज्ञान की बात पूछने आया हूँ। क्या है वह ब्रह्मज्ञान?
क्यों हम ब्रह्म का दर्शन नहीं कर पाते?

श्री कृष्ण जी ने कहा- ''अभी आये हो। थोड़ी देर बैठो, प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा।''

नारद जी बैठे, विश्राम किया; बोले- ''अब दो मेरे प्रश्न का उत्तर।''

श्री कृष्ण ने कहा- ''आओ, जंगल में घूमने चलें, वहाँ बातें करेंगे।''

दोनों निकल पड़े सैर को। घूमते-घूमते नारद जी काफ़ी थक गये। प्यास भी सताने लगी। श्री कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा- ''नारद जी! आपको शायद प्यास लगी है, मुझे भी लगी है। मैं यहाँ बैठता हूँ। आप कहीं से देखकर थोड़ा पानी ले आइये।''

नारद जी बोले- ''आप बैठिये, मैं अभी पानी लेकर आता हूँ।'' आगे गये तो उन्हें एक कुआँ मिला, जिसपर कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही थी। नारद जी ने पानी माँगा। एक युवती ने अपने घड़े से पानी पिला दिया। नारद जी पानी पी रहे थे और उसकी ओर देख रहे थे। देखते-देखते मन में मोह जाग उठा। पानी पी लिया तो एक ओर खड़े हो गये। वह लड़की घड़े को लेकर अपने घर को चली तो नारद जी भी उसके पीछे-पीछे चल पड़े। उसके घर में पहुँचे तो लड़की के पिता ने उन्हें पहचानकर कहा- ''आइये नारद जी! मेरे सौभाग्य कि आपके दर्शन हुए। अब भोजन किये बिना जाने न दूँगा।''

नारद जी भी यह चाहते थे; बोले- ''भूख तो लगी है।''

भोजन कर चुके तो बोले- ''हम कुछ दिन तुम्हारे घर में रहें तो क्या हो?''

लड़की के पिता ने कहा- ''यह तो मेरा सौभाग्य है।''

नारद जी वहीं टिक गये। उस लड़की के रूप का मोह उन्हें पागल किये देता था। मन में जो गिरावट आ गई थी, वह और भी नीचे लिये जाती थी। एक दिन लड़की के पिता से बोले- ''मैं चाहता हूँ कि इस कन्या का विवाह मेरे साथ हो जाय।''

लड़की के पिता ने कहा- ''महाराज! कन्या तो पराया धन है। मुझे उसका विवाह तो करना ही है। आपसे अच्छा वर उसे कहाँ मिलेगा? मैं विवाह कर दूँगा अवश्य, परन्तु मेरी एक शर्त भी माननी होगी और शर्त यह है कि विवाह के पश्चात् आप मेरे ही घर पर रहें, कहीं जायें नहीं।''

नारद जी को और क्या चाहिए था! रमते राम का कोई घर-घाट था नहीं। चिन्ता कर रहे थे कि पत्नी को लेकर कहाँ जायेंगे? बना-बनाया घर मिल गया। शर्त स्वीकार हो गई। विवाह भी हो गया। नारद जी अपने-आप को भूलकर ससुरालवालों के पशु चराते, उनके खेतों में काम करते। उन्हीं के घर में रहने लगे। इस प्रकार कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। गृहस्थी नारद के दो-तीन बच्चे भी हो गये। तभी एक दिन मूसलाधार वर्षा होने लगी। एक दिन, दो दिन, कई दिन होती रही। सब ओर जल-थल एक हो गया। शेष लोग कहाँ-कहाँ गये, यह नारद जी ने नहीं देखा। वह तो अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर मकान की दूसरी मंज़िल में चले गये। वहाँ भी पानी पहुँचा तो छत पर चले गये। परन्तु बाढ़ तो रुकी नहीं। पानी जब छत के निकट पहुँचा तो नारद जी ने समझा कि मकान अब बचेगा नहीं। पत्नी और बच्चों सहित पानी में कूद पड़े कि किसी उँचे स्थान पर जाकर प्राण बचायें। परन्तु ऐसा करते ही दो बच्चे डूब गए। पत्नी रोने लगी तो नारद बोले- ''भागवान, रोती क्यों है? तू भी है, मैं भी हूँ, बच्चे और हो जायेंगे।'' परन्तु तभी तीसरा बच्चा भी डूब गया। उसे ढूँढने के लिए नारद जी हाथ-पाँव मार ही रहे थे कि पानी का एक और रेला आया, पत्नी भी डूब गई। बड़ी कठिनता से नारद जी एक ऊँचे स्थान पर पहुँचे। वहाँ भी पानी था। थक बहुत गये थे। तैरने का अब प्रश्न उत्पन्न नहीं होता था, परन्तु धन्यवाद किया कि खड़े हो सकते हैं। पानी छाती तक था। तभी पानी ऊपर बढ़ा, कन्धों तक पहुँच गया, फिर ठोडी भी डूब गई। पानी होंठों के पास पहुँचा तो नारद जी चिल्ला उठे- ''हे भगवन्, मुझे बचाओ!''

तभी याद आया कि वे तो भगवान् कृष्ण के लिए पानी लेने आये थे। रोकर बोले- ''क्षमा करो भगवन्!''

और तब कहानी है कि आँख खुल गई। नारद जी ने देखा कि कहीं कुछ भी नहीं है। वे जंगल में पड़े हैं। सामने खड़े श्री कृष्ण मुस्करा रहे हैं। मुस्कराते हुए उन्होंने कहा- ''नारद जी ! आपके प्रश्न का उत्तर मिल गया है या नहीं?''

प्रकृति की वास्तविकता को समझकर इससे छुटकारा पा लेना ही ब्रह्मज्ञान है। इससे मुक्ति पाये बिना ब्रह्मदर्शन नहीं होता। परन्तु यह प्रकृति माया इतनी लुभानेवाली है कि इसके जाल में फँसा व्यक्ति तभी समझता है, जब नाक तक पानी आ जाता है।

-: वैदिक विद्वानों के प्रवचन :-

अब विचार टेलीवीज़न नेटवर्क द्वारा निर्मित सभी कार्यक्रम **आस्था चैनल** पर दैनिक रुप से हररोज रात्रि ९.३० से १०.३० बजे तक प्रसारित किये जायेंगे। इन कार्यक्रमों के दैनिक प्रसारण का विवरण निम्न अनुसार हैं।

दिन	विषय (कार्यक्रमों का विवरण)	वक्ता
सोमवार	क्रियांत्मक योगाभ्यास	आचार्य ज्ञानेश्वर जी आर्य
मंगळवार	ईशोपनिषद्	स्वामी विवेकानन्द जी परिव्राजक
बुधवार	मधुर सम्बन्धों के स्वर्णीम सूत्र	आचार्य आशीष जी आर्य
गुरुवार	व्यक्ति विकास	डॉ. विनय विद्यालंकार
शुक्रवार	पतंजल योगदर्शन	आचार्य सत्यप्रकाश जी
शनिवार	सोलह संस्कार	डॉ. वागीश आचार्य
रविवार	दस्तावेजी चलचित्र, डोक्युमेन्टरी/ लघु चलचित्र (शार्ट फिल्म)	

सभी आर्य बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि इसका लाभ लेवें एवं अपनी प्रतिक्रिया विचार को info@vichaar.tv पर जरूर लीख भेजें। इसकी अधिक जानकारी प्राप्त करने हेतु विचार की वैबसाईट www.vichaar.tv अवश्य देखें।

पाप और पुण्य

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

इस बात को सभी मानते हैं कि संसार में प्रत्येक मनुष्य को दुःख और सुख होता है, जिसे हम प्रत्यक्ष देखते हैं। परन्तु उसके कारणों को जाननेवाले बहुत ही थोड़े मनुष्य हैं। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य सुख की इच्छा और दुःख से घृणा करता है, तथापि सुख के कारणों को यथार्थ रूप से न जानने से वह सुख को प्राप्त नहीं कर सकता और न ही दुःख से पीछा छुड़ा सकता है। दुःख से छूटने का पूर्ण प्रयत्न करने पर भी समस्त संसार के मनुष्य दुःख भोग रहे हैं।

जब हम शास्त्रकारों से दुःख का कारण पूछते हैं तो वे हमें दुःख को पाप का फल बताते हैं, और जब हम सुख के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं तो वे हमें उसे पुण्य का फल बताते हैं, अतः दुःख और सुख के कारण पाप और पुण्य हैं। ऐसी दशा में हमारा कर्त्तव्य है कि हम पाप और पुण्य के स्वरूप को जानें। गौतमसूत्र के भाष्य में महात्मा वात्स्यायन ने पाप की यह परिभाषा की है-

दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्त्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति, वाचाऽनृतपरुषसूचनाऽसम्बद्धानि, मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सा नास्तिक्यं चेति। सेयं पापात्मिका प्रवृत्तिरधर्माय।।*

अर्थ– राग-द्वेष आदि दोषों में फँसकर शरीर से हिंसा, चोरी और व्यभिचारादि करता है, वाणी से मिथ्या भाषण, कठोर बोलना, दूसरों की निन्दा करना और असम्बद्ध प्रलाप करना और मन से पराई हानि करने का विचार, पराये धन की इच्छा तथा नास्तिकता अर्थात् ईश्वरीय आज्ञा को भंग भरना इत्यादि करता है। यह पाप से युक्त प्रवृत्ति अधर्म के लिए होती है।

अथ शुभा शरीरेण दानं परित्राणं परिचरणञ्च, वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायञ्चेति, मनसा दयाऽमत्सरस्पृहां श्रद्धाञ्चेति। सेयं धर्माय।।+

अर्थ– शुभ प्रवृत्ति यह है कि शरीर से दान देना, दूसरे की रक्षा करना, तथा दूसरों की सेवा करना, वाणी से सत्य बोलना, दूसरे के हित का उपदेश करना, प्रिय बोलना तथा वेद का पढ़ना और मन से दया करना, लोभ का त्याग तथा श्रद्धा-ये धर्म के लिए होते हैं।

यद्यपि महात्मा वात्स्यायन के इस लेख से पाप और पुण्य की व्याख्या हो गई, परन्तु लक्षण यहाँ से भी नहीं मिला। हाँ, स्मृतिकारों का यह वाक्य स्पष्ट शब्दों में पाप और पुण्य का लक्षण बताता है-

वेदप्रतिपादितो धर्म्मो ह्यधर्मस्तद् विपर्य्ययः।।

अर्थ– जिस काम को वेद ने बताया हो अथवा (वेद शब्द से ज्ञान अर्थ लेकर) जो ज्ञान के अनुकूल हो वह धर्म है, और जो वेद के प्रतिकूल हो वह अधर्म है।

महात्मा जैमिनि ने भी मीमांसादर्शन में धर्म का ऐसा ही लक्षण किया है-

चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः।। मीमांसा दर्शन १।१।२

अर्थ– जिस कर्त्तव्य में अर्थात् जिस कार्य के करने में वेद की आज्ञा है वही धर्म है, और जो धर्म के प्रतिकूल होगा वह अधर्म होगा यह स्पष्ट है ही।

वेद ने मनुष्य को मोक्ष के निमित्त परमात्मा के जानने का उपदेश किया है और उसके लिए जिन साधनों की आवश्यकता है वे बताये हैं। सुतरां उन्हें जो कर्म परमात्मा के जानने में सहायक हैं वे धर्म अर्थात् पुण्य और जो परमात्मा के जानने में रुकावट डालनेवाले हैं वे अधर्म अर्थात् पाप हैं। अब सोचना चाहिए कि हम परमात्मा को किस प्रकार जान सकते हैं? परमात्मा हमसे दूर नहीं जिसके लिए चलने की आवश्यकता हो, वरन् वह हमारे अत्यन्त निकट, अर्थात् हमारे बाहर और भीतर प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है। यदि कहो कि हम उसे जान क्यों नहीं पाते तो उसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार अञ्जन नेत्रों के बहुत ही निकट होता है, परन्तु नेत्र जो सब पदार्थों को देखते हैं उसे नहीं देख सकते, इसी प्रकार जीवात्मा सम्पूर्ण पदार्थों को जान सकता है, परन्तु अपने अति समीपवर्ती परमात्मा को नहीं जान सकता। जिस प्रकार उस अञ्जन को देखने के लिए दर्पण की आवश्यकता है, इसी प्रकार परमात्मा के देखने लिए भी एक दर्पण की आवश्यकता है जोकि परमात्मा ने मन के नाम से हमें दिया हुआ है, परन्तु, जैसे दर्पण के मलीन होने से स्वरूप का ज्ञान नहीं होता और शुद्ध होने से होता है, इसी प्रकार मन के मलीन होने से परमात्मा का ज्ञान नहीं होता, उसके शुद्ध होने से ही होता है। सुतरां जो वस्तु मन में अशुद्धि उत्पन्न करे उसका संग करना पाप है, और जो काम मन को शुद्ध करे उसका करना पुण्य है। चमकीली वस्तुओं की इच्छा मन को मलीन करनेवाली है, जिसके कारण मन शुद्ध नहीं हो सकता। महात्मा मनु ने मन की शुद्धि का कारण सत्य को माना जैसाकि उन्होंने लिखा है-

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।

-मनु० ५।१०८

अर्थ– जल से शरीर पवित्र होता है, सत्य बोलने तथा सत्याचरण करने से मन शुद्ध होता है, विद्या और तप से आत्मा शुद्ध होता है तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

अब विचारना यह है कि जब सत्य से मन शुद्ध होता है तो हम सत्य से किस प्रकार पृथक् हो गये हैं? क्या हमें यह ज्ञान ही नहीं कि सत्य ही हमारे मन को शुद्ध करनेवाला है? अथवा और कोई रुकावट है जो हमें सत्य से पृथक् रखती है? यह तो शास्त्रों में भी सत्य के सम्बन्ध में भली

प्रकार लिखा हुआ है, और देखिए फारसी का कवि सादी भी कहता है-

रास्ती मूजबे रजाय खुदास्त। कस न दीदम कि गुमशुदज़ राहे-रास्त।।

अर्थात्-सत्य परमात्मा के प्रसन्न होने का कारण है। किसी को नहीं देखा कि सीधे रास्ते से भूल गया हो।

अब प्रकट हुआ कि सत्य के गुणों से तो प्रत्येक मनुष्य विज्ञ है, परन्तु कोई रुकावट ऐसी अवश्य है जिसके कारण हम सत्य से दूर जा पड़े हैं। इस रुकावट का वर्णन वेदों में स्पष्ट रीति से किया गया है। देखो यजुर्वेद अध्याय ४०-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्म्माय दृष्टये।।

- इशो० १५*

अर्थ- चमकीली वस्तुओं की इच्छा के बर्तन से सत्य का सुख ढँपा हुआ है, यदि तुम अपनी उन्नति करना चाहते हो तो उस पर्दे को उठा डालो, अर्थात् चमकीली वस्तुओं की इच्छा छोड़ दो।

चमकीली वस्तुओं की इच्छा जिसका नाम लोभ तथा काम है, जिनसे मोह उत्पन्न होता है, सत्य से पृथक् करनेवाली है। यावत् अहङ्कार, लोभ तथा मोह रहेंगे, तावत् मनुष्य सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इनमें से भी लोभ सबसे प्रबल है। यद्यपि काम के समान मनुष्य का कोई शत्रु नहीं, तथापि इन्द्रियों के शिथिल एवं विशेष रोगग्रसित हो जाने पर काम की इच्छा जाती रहती है, परन्तु लोभ उस समय भी बढ़ता ही जाता है, अत: मनुष्य का सबसे प्रबल शत्रु लोभ है। इसी कारण महात्मा मनु ने सब शुद्धियों में अर्थशुद्धि को ही विशेष उत्तम माना है, तथा-

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।

अर्थ- सर्वप्रकार की शुद्धियों में अर्थशुद्धि, लोभरहित होना विशेष है।

परमात्मा ने वेद में भी इस बात का उपदेश किया है। देखो यजुर्वेद अध्याय ४० का प्रथम मंत्र, जिसमें दूसरों के धन लेने को वरजा+ है। काम, लोभ और मोह- ये तीनों प्राकृतिक पदार्थों का संग है। जिस समय मनुष्य की इन्द्रियाँ, जो प्रकृति का कार्य होने से प्रकृति से बने हुए पदार्थों को ही देख सकती हैं, जागृत अवस्था में कार्य करती हैं, उसी समय काम, लोभ और मोह उत्पन्न होते हैं। जिस समय सुषुप्त-अवस्था में जीवात्मा का इनसे सम्बन्ध टूट जाता है, अर्थात् वह इन्द्रियों से प्राकृतिक पदार्थों का देखना बन्द कर देता है, उस समय काम, लोभ और मोह लेशमात्र भी उत्पन्न नहीं हो सकते। इससे पत्ता चला कि मन में मैल प्राकृतिक पदार्थों के सङ्ग से आता है। जिस समय जीव प्राकृतिक पदार्थों की इच्छा को दूर कर दे, उस समय उसे किसी प्रकार का कष्ट हो नहीं सकता, परन्तु जीव चेतन अर्थात् ज्ञानवाला है। वह कभी भी ज्ञान से शून्य नहीं रह सकता। ऐसी दशा में यदि वह, प्राकृतिक पदार्थों का संग न करे तो क्या करे? इसका उत्तर यह है कि मन, जो प्राकृतिक पदार्थों के प्रतिकूल परमात्मा का संग करता है, उसी का संग करे।

प्रश्न उठता है कि मनुष्य की इन्द्रियाँ तो अपने स्वाभाविक काम को नहीं छोड़ सकतीं और इनका सम्बन्ध प्राकृतिक पदार्थों से ही होगा। इसका उत्तर यह है कि आत्मा इन्द्रियों के विषयों को उनका धर्म समझकर इन्द्रियों को परोपकार में लगाये और प्रत्येक समय यही ध्यान रक्खे कि यह परमात्मा की आज्ञा है। अथवा, संसार में ब्रह्म की शक्ति से जो नाना प्रकार के देहधारी उत्पन्न होते हैं, उनमें प्रेम करने के स्थान में उनके बनानेवाले की कारीगरी का विचार करता रहे। ऐसी दशा में इन्द्रियों का प्रकृति से सम्बन्ध जीव के लिए हानिकारक न होकर लाभकारी होगा, क्योंकि चेतन जीवात्मा के संकल्पानुसार ही उसपर प्रभाव पड़ता है।

उदाहरणार्थ एक मनुष्य सिंह को इस उद्देश्य से मारता है कि उसका मांस खाये, तो ऐसा मनुष्य पाप करता है, परन्तु दूसरा व्यक्ति जो उसे जीवों की रक्षा के निमित्त मारता है, पुण्य करता है, क्योंकि जो निर्बल पशुओं को बचाने के निमित्त प्रयत्न करता है वह परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है, परन्तु जो खाने के लिए मारता है वह प्रकृति की उपासना करता है।

परमात्मा ने जीवात्मा को इस बात का उपदेश किया है कि वह बुद्धि और विद्या के द्वारा दूसरों की रक्षा करे। अथवा यूँ समझो कि बड़ों का सत्कार, बराबर वालों से प्रेम तथा छोटों पर दया करना मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है। जो इसके अनुसार काम करता है वह पुण्य करता है और जो इसके विरुद्ध करता है वह पाप करता है। सबसे बड़ा परमात्मा है। उसकी आज्ञा पालन करना जीव का मुख्य कर्त्तव्य है। तत्पश्चात् माता, पिता, गुरु, राजा आदि तथा देवता अर्थात् विद्वान् लोग जो हमसे किसी-न-किसी प्रकार की महत्ता रखते हैं, उनका आदर करना भी मनुष्य का कर्त्तव्य है। जो जो मनुष्य इस कर्त्तव्य का यथोचित पालन करता है वह पुण्य करता है, और जो इसके विरुद्ध आचरण करता है वह पाप करता है। जितने जीव हमसे गुणों में बराबर हैं उनके साथ प्रेम करना पुण्य है, परन्तु इस विचार से कि यह मेरे बराबर सम्मान प्राप्त कर चुका है, कदाचित् मुझसे बढ़ा जाए, उनसे द्वेष करना महान् पाप है। इसी प्रकार निर्मलों के स्वत्वों को भी ले-लेना महापाप है। जहाँ तक हो सके निर्मलों की सहायता करना पुण्य है। जिस प्रकार का निर्बल हो उसी प्रकार की सहायता से उनकी निर्मलता को दूर करना मनुष्यत्व है। जिस प्रकार का पदार्थ हमारे पास दूसरों से अधिक हो उसी से सहायता करना पुण्य है, और दूसरों को किसी प्रकार की हानि पहुँचाना अथवा हानि पहुँचाने का विचार करना पाप है। मनुष्य का अपनी आवश्यकताओं के लिए प्रपञ्च करना जीवन को व्यर्थ गँवाना है, क्योंकि भोग के बदलने में मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है।

वर्तमान जीवन में मनुष्य अपने लिए जो कुछ करता है वह सब भोग के लिए करता है। जिसकी उन्नति वा अवनति हमारे हाथ में न हो, उसकी उन्नति वा अवनति में अपना समय नष्ट करना स्पष्ट अज्ञान का फल है।

ही कारण है कि बहुधा मनुष्य असफलता के दु:ख की भेट चढ़ जाते हैं। दि भोग में उस कार्य का होना है तब तो किसी-न-किसी प्रकार वह गर्य अवश्य ही होगा, चाहे इच्छा से उसके लिए प्रयत्न करो चाहे न करो।

बहुत-से मनुष्यों के हृदय में यह सन्देह होगा कि कर्त्तव्य और ोक्तव्य में भेद किस प्रकार हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि प्रथम, ो दशा बीज बोने के समय होती है, वह दशा खाने के समय नहीं होती। ो अन्तर इन दोनों अवस्थाओं में है वही कर्त्तव्य और भोक्तव्य में मझना चाहिए। खाने का कार्य मनुष्य को अवश्य करना ही पड़ेगा। यदि ोई मनुष्य चाहे कि मैं तनिक भी न खाकर जीता रहूँ तो यह असम्भव है, रन्तु बोने में मनुष्य की यह स्थिति नहीं होती। दूसरे, खानेवाले का ाधार तो मनुष्य का अपना पेट होगा, परन्तु बोनेवाली वस्तु का आधार थिवी होगी, अर्थात् जिस कार्य का निश्चयात्मक सम्बन्ध दूसरे जीवों के ाथ किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता है, वह कर्त्तव्य है। यदि हमारे ंकल्प से दूसरे को हानि पहुँचती है तो हम पाप कर रहे हैं। यदि हम अपने ंकल्प से किसी को लाभ पहुँचाने का विचार कर रहे हैं तो हम पुण्य कर हे हैं। इन संकल्पों का पूरा होना हमारे अधिकार में नहीं वरन् उनके भोग ा सम्बन्ध रखता है, जैसे हमने किसी को हानि पहुँचाने का विचार किया ो हम पापी हो चुके, परन्तु उसको हानि पहुँचना उसके भोग के वश में है। दि उसके भोग में हानि पहुँचना न हो तो केवल हमारे विचार से उसे हानि हीं पहुँच सकती और ऐसी दशा में हमें संकल्प से सफलता प्राप्त न होगी।

जहाँ तक विचार किया जाता है, स्पष्ट विदित होता है कि कोई किसी को हानि-लाभ नहीं पहुँचा सकता, वरन् अपना ही हानि-लाभ कर सकता है। जो दूसरों को हानि पहुँचाने में लगा हुआ है, वास्तव में वह अपने मन को बिगाड़ रहा है। इसी का नाम मलदोष है, जिसके कारण नुष्य की विवेचन-शक्ति नितान्त मारी जाती है। जो औरों को लाभ हुँचाने की धुन में मस्त है वह अपना लाभ कर रहा है, अर्थात् उसका मन ुद्ध हो जाता है। प्रत्येक कार्य जो दूसरों के उपकार के उद्देश्य से किया ाता है, हमारे उपकार का कारण होता है, अर्थात् उससे हमारा मन शुद्ध ोकर परमात्मा की उपासना के योग्य हो जाता है। जो मनुष्य दूसरों को :ख पहुँचाकर अपने सुख की आशा रखते हैं, उनसे बढ़कर मूर्ख कोई हीं, क्योंकि दूसरों को हानि पहुँचाने के विचार से ही अपने को हानि अर्थात् दु:ख पहुँचने का सामान पैदा हो जाता है। जब भोग के नियत और अपरिवर्तित होने को ध्यान में रखते हुए ऐसे मनुष्यों की दशा पर विचार किया जाए तो उनके मूर्ख होने में कोई सन्देह ही नहीं रहता, क्योंकि दूसरों को हानि पहुँचाकर अपना भोग तो बदल नहीं सकते, केवल आगे के लिए अपने लिए काँटे बोते हैं, अत: प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि औरों को सुख पहुँचाने का ध्यान, जिसका नाम पुण्य है और जिसका फल मन की शुद्धि है, प्रत्येक समय रक्खे और दूसरों को हानि पहुँचाने के विचार से जोकि पाप है और जिसका फल दु:ख है, सर्वदा घृणा करें।

(दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह से साभार)

गैस की समस्या है, तो खाएं लौकी

– दीपक भारती

हरी सब्जियों में लौकी शायद सबसे जल्दी पकती है। यह और बात है कि आज या शहर में जो लौकी हम खरीद रहे हैं, वह बहुत देर में पकती है। कई बार तो वह ठीक से पकती भी नहीं। देर तक पकाने के बाद भी अगर लौकी ठीक से नहीं पकती है, तो इसका मतलब है उसे इंजेक्शन लगाकर बड़ा किया गया है। लौकी में लगभग ९६ प्रतिशत पानी होता है। यानि सलाद में जो काम खीरा करता है, सब्जी में वही काम लौकी करती है।

माना जाता है कि लौकी का जन्म अफ्रीका में हुआ। पहले भी खाने से ज्यादा इसका इस्तेमाल बरतन के रूप में किया जाता था। लौकी लम्बे आकार के साथ ही कद्दू की तरह गोल आकार में भी पाई जाती है। गोल आकार वाली यह लौकी जब सूख जाती थी, तो उसके अंदर के बीज निकालकर उसमें पानी रखा जाता था। आज भी आपने देखा होगा कि गाँवों में सूखे हुए कद्दू को काटकर उसके अंदर सूखे हुए बीज रखे जाते हैं। इसके अलावा अंदर से खाली करने के बाद लौकी का वाद्ययंत्र के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता था।

आज यह हमारी खास हरी सब्जी है, जिसे शाकाहार लोग बेहद पसंद करते है। इसे पसंद किये जाने की दो वजहें है। पहली यह कि यह जल्दी पक जाती है। दूसरे इसे बनाने में ज्यादा मसालों का इस्तेमाल नहीं करना पड़ता। बीमारी के दौरान जब डॉक्टर किसी को लौकी की सब्जी खाने की सलाह देते हैं, तो इसमें केवल नमक मिलाकर पकाते हैं। गर्मियों में होटलों में इसे चने के साथ मिलाकर पकाया जाता है। हालाँकि तब यह काफी मसालेदार होती है। महाराष्ट्र में लौकी की ऊपरी हरी परत से चटनी बनाई जाती है। चीन में सूप बनाने में इसका इस्तेमाल किया जाता है। तो जापान में एक तरह के रोल्ड सुशी (जापानी डिश) बनाने में यह काम में लायी जाती है।

लौकी के पाँच फायदे

१) लौकी की तासीर ठंड की है। यानि गर्मियों के मौसम में यह आपके पेट के लिए काफी अच्छा रहता है। २) इसमें फाइबर होने की वजह से यह अल्सर, पाइल्स और गैस के रोगियों के लिए काफी फायदेमंद सब्जी है। ३) पेशाब से जुड़ी अनियमितताओं के इलाज में लौकी फायदा पहुँचाती है। अगर पेशाब करते समय किसी को जलन महसूस होती हो, तो डॉक्टर उसे लौकी खाने की सलाह देते हैं। ४) लौकी हमारे लीवर को भी दुरुस्त रखती है। अगर किसी का लीवर संक्रमित है और ठीक से काम नहीं कर रहा हो, तो लौकी खाना उसके लिए फायदेमंद होता है। ५) इसमें ९३ प्रतिशत पानी होता है। इसमें कैलोरी की मात्रा कम होती है, जिस वजह से इसे आसानी से पकाया जा सकता है।

नफा है, नुकसान भी-कच्चा भोजन तो नुकसानदेह होता ही है। अगर लौकी को भी ठीक से न पकाया जाए और अधपका खाया जाए, तो इससे पेट और आंत की बीमारी हो सकती है।

तीन प्रकार के पाश

आचार्य प्रियव्रत

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद-
वाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवा-
नागसो अदितये स्याम ।।३।।

अर्थ- **(आदित्य)** सूर्य की भाँति प्रकाशमान और विनाश-रहित **(वरूण)** हे वरणीय प्रभो! हमारे **(उत्तमम्)** सबसे ऊँचे अर्थात् सिर के **(पाशम्)** बन्धन को **(उत्-श्रथाय)** ऊपर से उतारकर शिथिल कर दीजिए **(अधमम्)** सबसे निचले अर्थात् पैरों के बन्धन को **(अव-श्रथाय)** शिथिल करके नीचे गिरा दीजिए, और **(मध्यमम्)** मध्यभाग के बन्धन को भी **(वि-श्रथाय)** वियुक्त करके शिथिल कर दीजिए **(अथ)** आपकी कृपा से हमारे पाशों के शिथिल हो जाने के अनन्तर **(वयम्)** हम लोग **(अनागसः)** निष्पाप होकर **(तव)** आपके **(व्रते)** नियमों में **(अदितये)** अखण्डित रूप से उनका पालन करने के लिए **(स्याम)** रहें।

उक्त दोनों मन्त्रों से हमारे बन्धनों को काटने के लिए भगवान् से प्रार्थना की जा रही थी। मन्त्रों में प्रयुक्त बन्धन के वाचक धामन् शब्द द्वारा बन्धनों के स्वरूप पर भी कुछ प्रकाश इन मन्त्रों की प्रार्थना में डाल दिया गया था। प्रस्तुत मन्त्र की प्रार्थना में बन्धनों के स्वरूप पर एक और प्रकार से प्रकाश डाला गया है।

हमें दुःख में बाँधनेवाले हमारे पाप-पाश तीन प्रकार के हैं। उत्तम, मध्यम और अधम। हमारे शरीर में सबसे उँचा स्थान सिर का है। हमारी सारी ज्ञान-शक्ति का केन्द्र सिर ही है। हमारे मस्तक में जो पाप-संकल्प उठते रहते हैं, वहाँ जो पाप के विचार उठते रहते हैं, वे उत्तम कोटि के पाश हैं, क्योंकि ये पाप- विचार ही हमारे सब प्रकार के पापों के मूलकारण हाते हैं। हमारे शरीर के मध्य भाग में पेट और जननेन्द्रिय हैं। पेट लोभ-लालच का प्रतिनिधि है और जननेन्द्रिय विषयासक्ति का। हम लोभ-लालच और विषयासक्ति में फँसकर जो पाप करते हैं, वे सब मध्य कोटि के पाप हैं। हमारे शरीर का अधम- सबसे निचला भाग पैर हैं। पैर ज्ञानहीनता का प्रतिनिधि है। हमारे अनेक पाप हमारी ज्ञानहीनता के कारण होते हैं। अज्ञान के कारण हम जो पाप करते हैं वे सब ''पैर'' के पाप हैं- अधम पाप हैं। यह मन्त्र पीछे ऋग्वेद १।२४ सूक्त में भी आ चुका है। इस दिशा में इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या पाठकों को वहीं देखनी चाहिए।

पाशों के उत्तम, मध्यम और अधम विभाग की व्याख्या एक और प्रकार से भी हो सकती है। भगवान् की इस सृष्टि के आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक ये तीन भेद किये जाते हैं। इन तीनों प्रकार की सृष्टियों के अपने पृथक्-पृतक् नियम हैं। इन नियमों के भंग करने से पाप उत्पन्न होता है जोकि दुःख में फँसने का कारण होता है। आधिदैविक जगत् के नियमों के भंगरूप पाप को हम उत्तम पाश कह सकते हैं, आध्यात्मिक जगत् के नियमों के भंगरूप पाप को मध्यम और आधिभौतिक जगत् के नियमों के भंगरूप पाप को अधम पाप कह सकते हैं। इस विभाग की उत्तम-मध्यमाधमता कल्पित वस्तु है। परमात्मा को, देवाधिदेव होने से आधिदैविक विभाग में गिनने पर इस विभाग को उत्तम कहा जा सकता है, आध्यात्मिक विभाग को मध्यम और आधिभौतिक विभाग को अधम कहा जा सकता है। परमात्मा को आत्मा होने के कारण आध्यात्मिक विभाग में गिनने पर इस विभाग को उत्तम कहा जा सकता है, आधिदैविक विभाग को मध्यम और आधिभौतिक विभाग को अधम कहा जा सकता है।

एक और प्रकार से भी पाशों की उत्तम मध्यमाधमता की कल्पना की जा सकती है। सारा जगत् प्रकृति के सत्त्व, रज और तम नामक गुणों या अंशों के विभिन्न योगों से बनता है। हमारे शरीर में भी इन तीनों गुणों का मिश्रण है और हमारे विचारों के साधन मस्तक में भी इन तीनों गुणों का मिश्रण है। हमारे शरीर की सात्त्विक, राजस् और तामस् ये तीन अवस्थाएँ समय-समय पर होती रहती हैं। इसी प्रकार हमारे मन में भी सात्त्विक, राजस् और तामस् वृत्तियाँ उठती रहती हैं। सत्त्व को उत्तम, रज को मध्यम और तम को अधम समझा जाता है। जब हमारा आत्मा शरीर और मस्तक की इन तीनों प्रकार की वृत्तियों से पुण्य के कार्य करता है तब तो ये पाश नहीं बनती हैं, परन्तु जब हम इन वृत्तियों की सहायता से पाप के कर्म करते हैं तब ये वृत्तियाँ पाश बन जाती हैं- बन्धन हो जाती हैं, क्योंकि तब ये हमें दुःख में बाँधने का कारण होती हैं।

उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकार के पाप-पाशों को काटने में हममें भगवान् से सहायता लेनी हैं। उनकी संगति में जाकर हमने उनकी कृपा से शक्ति प्राप्त करके इन तीनों प्रकार के बन्धनों को तोड़ना है- तीनों प्रकार के पापों से अलग होना है और इस प्रकार अनागस्-निष्पाप होकर भगवान् के निर्धारित व्रतों-नियमों को अखण्डित रूप में पालन करते रहने की अवस्था में पहुँचना है। यह अवस्था हमें सांसारिक दुःखों से मुक्ति दिलवा-कर अन्त में मुक्ति की- ब्रह्मसाक्षात्कार की आनन्दमय अवस्था में ले-जाती है।

हे मेरे आत्मन्! तू अपने तीनों प्रकार के बन्धनों को तुड़वाने के लिए भगवान् की संगति में कब जाएगा?

(वरुण की नौक से साभार)

-: शराब तुझे पी जायेगी :-

शराब को तू पीने की कोशिश मत कर। तुझसे पहले करोड़ों लोगों ने पीने की कोशिश की, वे तो नहीं पी सके किन्तु शराब उन्हे पी गई।

जो डूबा इन गिलासो में, न उबरा जिंदगानी में।
करोड़ो बह गए, इन बोतलों के बंद पानी में।।

एक मुसलिम भाई शराब पीकर मस्जिद नहीं जा सकता, एक सिख गुरूद्वारे तथा जैनी नशा पीकर अपने पूजास्थल पर नहीं जाएगा। दुःख इस बात का है कि एक हिन्दू नशा पीकर देवी जागरण, अखंड रामायण पाठ, रामलीला करते हैं और अपने मंदिरों में जाते हैं क्यों? हिन्दू समाज इनका विरोध क्यों नहीं करता? इसे छोड़ क्यों नहीं देता?

- नशे से बचकर अच्छा मनुष्य हम बन जायें।

एक उद्‌बोधन

आर्य युवको ! नेता नहीं, सेवक बनो

डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार

(७ अक्टूबर १९१३ को दिल्ली में अखिल भारतीय आर्यकुमार सम्मेलन का चौथा अधिवेशन हुआ था, जिसकी अध्यक्षता महात्मा मुंशीरामजी ने की थी। इस अधिवेशन में महात्माजी ने आर्य युवकों को सम्बोधित करते हुए जो ओजस्वी व्याख्यान दिया था वह न केवल आर्य युवकों के लिए, वरन् सम्पूर्ण युवक समुदाय एवं देशवासियों के लिए आज भी उतना ही उद्‌बोधक एवं प्रेरक है जितना कि उस समय था। अत: उस व्याख्यान के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं।)

जाति की भविष्यत् आशाओ ! आज मुझे आपने जो सेवा का अवसर दिया है, उसके लिए आपका अत्यन्त धन्यवाद करता हूँ। एक कवि के अनुसार मुझे कहना पड़ता है– 'न हि विद्या न हि बाहु न हि खर्चन को दाम' अर्थात् न मुझमें विद्या है, न बाहु बल है, न धन बल है। तब भी आपने मुझे सभापति क्यों बनाया है? आशाओं से भरे नवयुवकों के समाज में एक नवयुवक सभापति अधिक अनुकूल होता। इस समय मुझे पच्चीस वर्ष की पुरानी एक घटना याद आती है। पच्चीस वर्ष हुए मैंने सद्धर्म प्रचारक निकाला था। उस समय मेरी आयु ३२ वर्ष की थी। उस समय जो लोग मुझे मिलने आते थे वे आश्चर्यित होते थे। वे कहा करते थे कि आपके लेखों को पढ़कर हम आपको वृद्ध समझते थे। परन्तु आप अभी नौजवान है। आज मेरे बाल श्वेत हो गये हैं, तथापि आर्यसमाज के वृद्ध सेवकों में, काम करते हुए नेताओं में, नवयुवकों में नवयुवक हृदय से अधिक मैं अपने हृदय को नवयुवक पाता हूँ। चाहे आप इसे अभिमान समझें, पर मैं इस एक अभिमान का दोष अपने सिर पर लेने को तैयार हूँ। मुझे हर्ष है कि युवक सम्मेलन का सभापति बनाकर आपने मेरे इसी गुण पर ठप्पा लगा दिया है। दूसरा कारण मुझे यह प्रतीत होता है कि मैंने पिछले १२ वर्षों में ६ वर्ष से लेकर २५ वर्ष तक के युवकों के हृदयों में उतराव-चढ़ाव देखे हैं।

आपने जो काम मुझे सौंपा है वह बड़ा कठिन है। बूढ़े अनुभवियों के सामने बात करना सुलभ है, परन्तु युवकों को मार्ग दिखाना बड़ा कठिन है। भूल होने पर बूढ़े अनुभवी अपने अनुभव से ठोकरों से बच सकते हैं और अपने पक्ष-दर्शक को भी रास्ता दिखा सकते हैं। परन्तु जहाँ उत्साह के साथ हृदय की सरलता मिली हो, वहाँ मार्ग-दर्शक की उत्तरदायिता बहुत बढ़ जाती है। मार्ग दिखलाने में यदि एक भी भूल हो गई, यदि उनमें एक भी दाग लग गया तो बड़ी हानि हो सकती है। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपकी सेवा सच्चे दिल से करूंगा।

आप पूछ सकते हैं कि मैं आपको आज क्या सन्देश देने आया हूँ? मैं आपको क्या सन्देशा दे सकता हूँ, हाँ मेरे हृदय में जो भाव हैं उन्हें मैं आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ। जिस ओर आशाएँ होती हैं, उसी ओर हृदय का स्रोत बढ़ता है। बूढ़े अपना काम कर चुके अब आप ही हमारी भविष्यत् आशाएँ हैं। एक बार जर्मनी का एक सम्राट् अपने मन्त्री के साथ घूमने जा रहा था। सम्राट ने एक बालक को टोपी उतार कर सलाम किया। वजीर के पूछने पर सम्राट् ने कहा कि 'तुझे सलाम क्यो करूँ, तूने जो कुछ बनना था सो बन चुका। तू मेरे वजीर होने से और कुछ अधिक नहीं हो सकता। इस बालक में न जाने क्या-क्या भरा है, इसलिए मैंने इसे सलाम किया है।' कौन जानता था कि कार्सिका की गली में खेलने वाला एक बालक सारे देश के सम्राटों का अधिपति होगा और संसार को हिला देगा। कौन कह सकता है कि आपके अन्दर कौन सी शक्तियाँ विलीन पड़ी हैं, अब हमारी आशाओं के केन्द्र आप ही हैं।

किसी काम को छोटा न समझें

सबसे पहिला मेरा यह निवेदन है कि नवयुवकों को कोई भी काम छोटा न समझना चाहिए। शिखर पर पहुँचने के लिए पहिली सीढ़ी पर चढ़ना जरूरी है। एक बार अमरीका के उम्मीदवार प्रधान की ओर इशारा करके एक अमरीकन ने ताने के तौर पर कहा था 'तुम्हारे नामवाला एक लड़का मेरे बूट सिया करता था, क्या तुम्हारा उसके साथ कोई सम्बन्ध है।' उम्मीदवार प्रधान ने अभिमान से कहा 'हां महाराज, मैं ही वह लड़का हूँ। जूते गाँठने के साथ मैं बूट पालिश भी किया करता था। परन्तु जाकर पूछो, जिसने मुझसे एक बार जूता गंठवाया, उसे दूसरी जगह जाने की आवश्यकता न पड़ी। महाशय, जिस ईमानदारी से मैं जूते गांठा करता था उसी ईमानदारी से आप के देश का राज्य करूंगा।' प्यारे युवको, हमारे देश को इस समय ऐसे कार्यकर्ताओं की जरूरत है जो छोटे से छोटे काम करने के लिए तैयार हों। और मेरा विश्वास है कि वे ही कार्यकर्ता बड़े काम कर सकेंगे।

दूसरा सन्देश, जो मैं आप तक पहुंचाना चाहता हूँ, वह उपनिषदों के शब्दों में नहीं पहुँचाया जा सकता। कई महानुभावों का मत है कि उपनिषदें लड़कों के हाथ में न देनी चाहिए। उनकी प्रतिष्ठा करते हुए भी मुझे उनसे मतभेद प्रकट करना पड़ता है। मेरी सम्मत्ति में उपनिषदें लड़कों के लिए बड़ा लाभदायक स्वाध्याय हैं। कई लोग योग को भी लड़कों के लिए खतरनाक समझते हैं। मैं कहता हूँ कि यदि माता के गले से लिपटना खतरनाक है तो योग भी खतरनाक है। युवावस्था में ही धर्मशील बनो, कौन जानता है कि इसी समय मृत्यु हो जाये। बालक, वृद्ध, युवा सबको इसी समय धर्म में लग जाना चाहिए। मुझे निश्चय है कि आर्ययुवक केवल रोटी के लिए नहीं पढ़ रहे हैं। मैं समझता हूँ कि वे अपने हृदय के अन्धकार को दूर करने के लिए पढ़ रहे हैं। अशान्तावस्था, शान्तस्वरूप के दर्शन के बिना कभी दूर नहीं हो सकती, मैं चाहता हूँ कि उपनिषद् का निम्नलिखित वाक्य प्रत्येक युवक के हृदय पर अङ्कित हो-

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।।

यह आत्मा सत्य से मिलता है, सत्य तप से मिलता है, सम्यक् ज्ञान के बिना कठिन और ब्रह्मचर्य के बिना सम्यक् ज्ञान असम्भव है। ब्रह्मचर्य सब धर्मों का मूल है, इसलिए प्यारे युवको, उस ब्रह्मचर्य का पालन यत्न से करो।

सेवक बनने का यत्न करो

अन्त में मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हूँ कि मैं उपदेश नहीं देता, क्योंकि मैं उपदेश देने के योग्य नहीं हूँ। हम वृद्ध आपको किस मुंह से उपदेश दें, बूढ़ों का यह कहना था कि वे आर्य धर्म रूपी फुलवाड़ी की रक्षा के लिए काँटे बन जाते और शत्रुओं से इसकी रक्षा करते। परन्तु कहते शोक होता है कि हमने काँटे बनकर रक्षा करने की जगह एक दूसरे को चुभाना आरम्भ कर दिया। नवयुवकों, हम अपने कर्तव्य से च्युत हुए हैं, तुम इस फुलवाड़ी के ऐसे फूल बनो जिसकी महक से सारी फुलवाड़ी महक जावे। मत देखो कि मुंशीराम या तुलसीराम क्या करता है। सेवक बनने का यत्न करो, क्योंकि लीडरों की अपेक्षा आर्य जाति को सेवकों की बहुत अधिक आवश्यकता है। जब कभी आपका पैर डगमगाने लगे तो राम के सेवक हनुमान् का स्मरण कर लिया करो। लंका की विजय करके महाराजा रामचन्द्र अयोध्या लौटे। राजगद्दी के मिलने के पीछे विभीषण, अंगद आदि सभी विदा होने लगे। उस समय माता-सीता ने सभी को कुछ पुरस्कार दिया। सीता का हनुमान् के साथ सबसे अधिक प्रेम था। माता ने अपना मोतियों का बहुमूल्य हार हनुमान् को दिया। हनुमान् ने हार लेकर एक मोती को तोड़ना आरम्भ किया। सीता के पूछने पर हनुमान् ने कहा– 'माता, मैं देखता था कि इन मोतियों के अन्दर राम का भी नाम है या नहीं, राम के नाम के बिना मैं इन मोतियों का क्या करूँ?' 'नवयुवको ! मैं पूछता हूँ, क्या तुममें से कोई भी दयानन्द रूपी राम का पायक हनुमान् बनने का यत्न न करेगा, महावीर के बिना दयानन्द का काम अधूरा पड़ा है। मुझे पूरी आशा है कि दयानन्द के काम को पूरा करने के लिए, पाप की लंका का विध्वंस करने के लिए तुम्हीं में से महावीर निकलेंगे।'

हमारे योद्धा अग्नि के समान तेज वाले तेजस्वी हों

डा. अशोक आर्य

सेना मैं योधा का, सैनिकका विशेष महत्त्व होता है। जो योधा विजय की कामना तो रखता है किन्तु उसमें वीरता नहीं है, तेज नहीं है, बल नहीं है, पराक्रम नहीं है, एसा व्यक्ति कभी वीर नहीं हो सकता, पराक्रमी नहीं हो सकता, तेजस्वी नहीं हो सकता। जो वीर नहीं है, बलवान नहीं है, तेजस्वी नहीं है, योधा नहीं है, एसा व्यक्ति किसी भी सेना का भाग नहीं होना चाहिए। यदि किसी सेना में इस प्रकार के भीरू लोग भर जावेंगे, वह सेना कभी शत्रु पर विजय प्राप्त नहीं कर सकती। इस समबन्ध में ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के मन्त्र इस प्रकार आदेश दे रहे हैं :

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्व:।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्रयन्तु अग्निरूपा: ।।

।। ऋग्वेद १०.८४.१, अथर्ववेद ४.३१.१।।

किसी भी देश की, किसी भी राष्ट्र की, किसी भी समुदाय की सुरक्षा उसके सैनिकों पर ही निर्भर होती है। सैनिकों का चरित्र जैसा होता है उसके अनुरूप ही उस राष्ट्र का, उस देश का परिचय समझा जाता है। यदि देश के सैनिक उदात्त चरित्र हैं तो वह राष्ट्र भी उदात्तता का परिचायक माना जाता है। यदि देश के सैनिक प्रसन्न हैं तो वह देश भी प्रान्नता से भर पूर होगा। अत: जैसे सैनिक होंगे वैसा ही देश होगा, वैसा ही राष्ट्र होगा। इस कारण ही यह मन्त्र सैनिक के गुणों को निर्धारित करते हुए कहता है कि एक देश के सैनिकों में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है:-

(१) सैनिक सदा प्रसन्नचित हों :-

किसी भी देश के, किसी भी राष्ट्र के सैनिक का प्रथम गुण होता है, उसकी प्रसन्नता। सैनिक का सदा प्रसन्न चित होना आवश्यक होता है। प्रसन्नचित व्यक्ति बडे से बड़े संकट का भी हंसते हुए सामना करता है। कष्ट से प्रसन्नचित व्यक्ति कभी डरता नहीं है। संकट से वह कभी भयभीत नहीं होता। जो व्यक्ति प्रसन्न रहता है, यदि वह योधा है तो वह सेना में अन्य सैनिकों को भी उत्साहित करेगा तथा बड़ी बड़ी परेशानियां जो युद्ध काल में आता हैं, उन सब का सामना वह प्रसन्नता से करेगा। इसलिए प्रत्येक सैनिक की वृति प्रसन्नता की होनी चाहिए। सैनिक सदा प्रसन्नचित होना चाहिए।

(२) सैनिक सदा निर्भीक हों :-

सैनिक का दूसरा गुण होता है निर्भीकता । भय को कायरता का चिन्ह माना गया है तथा कायर व्यक्ति कभी किसी भी क्षेत्र में विजयी नहीं हो सकता, फिर सेना में तो कायर सैनिक हो तो वह सदा उस सेना कि पराजय का कारण बना रहता है। सेना में ही नहीं प्रत्येक क्षेत्र में यह सब होता है। इस लिए ही मन्त्र कहता है कि सैनिक को कभी भी किसी प्रकार से भी भयभीत नहीं होना चाहिए। वह सदा निर्भय होकर युद्ध में जाना चाहिए। यदि वह निर्भय होगा तो वह खुला कर अपने पराक्रम दिखा सकेगा तथा सेना को विजय दिलाने का कारण बनेगा। यदि उसे युद्ध क्षेत्र में भी अपने परिजनों कि चिंता लगी रहेगी तो वह युद्ध क्षेत्र में होकर भी एकाग्र हो युद्ध नहीं कर पावेगा। अत: सैनिक का निर्भय होना युद्ध विजय के लिए आवश्यक है।

(३) सैनिक सदा तीक्षण हों :-

किसी भी सेना का सैनिक सदा द्रुत गति वाला होना चाहिए, तेज होना चाहिए। ताकि शुत्र के संभलने से पहले ही वह उसके ठिकाने पर पहुंच कर उस पर आक्रमण कर दे। उसे संभलने ही न दे, तो वह शीघ्र ही विजयी होता है।

(४) सैनिक सदा शस्त्रधारी हों :-

किसी भी देश के सैनिक सदा अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हों। यदि उनके पास अच्छे शस्त्र ही न होंगे तो वह युद्ध में विजयी कैसे होंगे, शत्रु के अत्याधुनिक शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा में क्या जौहर कर दिखा पावेंगे। विजेता होने के लिए सदा शत्रु सेना से उत्तम शस्त्रों का होना आवश्यक है तथा यह शस्त्र सदैव सैनिक के हाथों में होना आवश्यक है। इसलिए सैनिक के पास, योधा के पास उत्तम कोटि के शस्त्र होना आवश्यक होता है।

(५) सैनिक अपने शास्त्रों को तीक्षण करने वाले हों :-

सैनिक के पास जो भी शस्त्र हों, वह सदा तेज धार वाले होने चाहियें। एक सैनिक के पास शस्त्र तो उत्तम किस्म के हों किन्तु उनकी धार ही कुंद पड़ चुकी हो तो वह शत्रु को सरलता से काट ही नहीं पावेंगे। जो एक ही वार से शत्रु का नाश कर सके, एसी तलवार सैनिक के हाथों में होनी चाहिए। यदि तलवार की धार कुंद है तो बार बार के वार के पश्चात भी शत्रु सैनिक के बच जाने की संभावना बनी रह सकती है। अत: यदि हमारा सैनिक प्रसन्न व निर्भय है तो भी वह शस्त्र की कुंद धार के कारण विजयी नहीं हो पाता। इसलिये सैनिक के पास शत्रु पर विजय पाने के लिए तीक्षण शस्त्र का होना आवश्यक है।

(६) सैनिक अग्नि के सामान तेजस्वी हों :-

सेना का प्रत्येक सैनिक अग्नि के सामान तेज का पुंज होना चाहिए। जिस प्रकार आग कि लपटें अध्रष्ट होती हैं, छुप नहीं सकती, उसमें गिरा पदार्थ जलने से बच नहीं सकता, अग्नि सदा आगे ही आगे बढाती है, उस प्रकार ही सैनिक शत्रु कोमारते काटते, उस पर विजयी होते हुए निरंतर आगे बढ़ाते चले जाने चाहियें, निरंतर शत्रु सेना पर प्रलयंकर आक्रमण करते रहे। एक क्षण के लिए भी शत्रु को सुख से न बैठने दें।

मन्त्र कहता है कि जिस देश के सैनिकों में यह गुण होते हैं, उस देश की सेनायें सदा विजयी होते हुए निरंतर आगे ही आगे बढती चली जाती हैं, कभी पीछे नहीं देखती, विजयी ही होती चली जाती हैं। अत: प्रत्येक राजा को अपनी सफलता के लिए देश का गौरव बढाने के लिए अपने सैनिकों में यह गुण बनाए रखने चाहियें।

१०४ शिप्रा अपार्टमेंट, कौशाम्बी,
गाजियाबाद चलवार्ता, ०९७१८५२८०६८

ओ३म् नाम

डा. मुमुक्षु आर्य

परमात्मा का सर्वोत्तम एवं सर्वाधिक प्रिय नाम 'ओ३म्' स्वयं में एक महान मन्त्र है जो जीवन के अन्तिम क्षण तक शान्ति प्रदान करने वाला, सरल और सब प्रकार के दु:खों से छुडाने वाला है। आवश्यक है कि हम इस मन्त्र के अर्थ और जप की विधि को ठीक से समझ कर अपनाएं। ओ३म् ईश्वर का सर्वोत्तम नाम क्यों है? सर्वप्रथम इस पर विचार करें।

१. **धातु एवं विशेष अर्थ :** अव धातु से ओ३म् शब्द सिद्ध होता है अर्थ है सबकी रक्षा करने वाला। नम धातु से भी ओ३म् शब्द सिद्ध होता है। जीव का उपनयन करने से भगवान ओ३म् कहलाते हैं। प्राणों का उत्क्रमण उर्ध्वोन्मुख होता है अतः भगवान् ओ३म् कहलाते हैं। आप धातु समीप है- सबमें व्याप्त होने से भगवान् ओ३म् कहाते हैं।

२. **अ,उ, म से कई नामों की उत्पत्ति :-** जैसे अ से विराट, अग्नि, विश्व, उ से हिरणयगर्भ, वायु, तैजस, म से ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ।

३. **ओ३म् के त्रिक:-** अग्नि-वायु आदित्य, भूः, भुवः, स्वः, इन्द्र, शिव, वरूण, सत-चित्त-आनन्द।

४. **प्रतीक शब्द :-** अ, उ, म, ये तीन अक्षर परमात्मा के विभिन्न गुण, कर्म, स्वभाव के प्रतीक हैं। प्रतीक भाषा का विस्तार पाणनीय सूत्रों के प्रत्याहारों में हुआ फिर पिंगल के छन्दशास्त्र में और फिर गणित शास्त्र में। आधुनिक रसायन, गणित, भौतिक आदि की भाषा प्रतीक भाषा है।

५. **वर्णमाला की चरमसीमा:-** अ उ म वर्णमाला की चरम सीमा हैं। कण्ठ से ओष्ठ तक प्रभु ने अद्‌भुत वाणी तन्त्र प्रदान किया है। कण्ठ से प्रथम बोले जाना वाला शब्द 'अ' है। अन्तिम विशुद्ध स्वर ओष्ठ से बोला 'उ' है। सम्पूर्ण वर्णमाला का अन्तिम व्यंजन अक्षर 'म' है। अ, उ, म में इस प्रकार पूर्ण वर्णमाला समाविष्ट है।

अव्यय:- ओ३म् शब्द 'अव्यय' है। अव्ययों के न तो कारकों में रूप चलते हैं न वचनों में, न क्रिया की तरह कालों में। संस्कृत भाषा में इस शब्द का प्रयोग करने पर ओ३म् के आगे इति लगाकर वाक्य बनाते हैं। ओ३म् इति एतद् अक्षरम्। वाक्यों में प्रयोग की सुविधा के लिए ऋषियों ने ओ३म् के दो पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है- प्रणव, उदगीथ। सदा नवीन रहने से सनातन परमात्मा का नाम प्रणव है। सामगान में उच्च स्वर से गाने के कारण इसे उदगीथ भी कहते हैं।

७. **निज नाम:-** ओ३म् परमात्मा का निज नाम है। जैसे किसी व्यक्ति का निज नाम मुख्य होता है अन्य नाम गुण या सम्बन्ध के निमित से होते हैं और ये गौण होते हैं।

८. **वेदादिशास्त्रों में परमात्मा:-** के इसी ओ३म् नाम को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है जैसे- (यजु ४०.१७) ओ३म् खं ब्रह्म अर्थात् मैं आकाश की तरह सर्वत्र व्यापक और महान हूँ मेरा नाम ओम् है। ओ३म क्रतो स्मर (यजु. ४०-१५) तस्य वाचकः प्रवण (योग १.२७दर्शन)।

९. **ऐतरेय ब्राह्मण:-** में आया है कि वेदों को तपाया तो तीन शुक्र उत्पन्न हुए। ऋ से भू, यजु से भुवः, साम से स्वः। फिर इन तीनों शुक्रों को तपाया गया तो उससे तीन वर्ण उत्पन्न हुए- अकार, उकार, मकार। इन तीनों से मिलकर ओ३म् बना। इसका तात्पर्य हुआ कि ओ३म् सब वेदों का सार है।

१०. **मनुस्मृति:-** में प्रजापति परमात्मा ने अकार, उकार, मकार और भूः भुवः स्वः को तीनों वेदों से दुहकर सार रूप में निकाला।

११. **रामायण:** वाल्मीकि रामायण में ऋषि ने कहा है कि राम ने परम जप ओ३म् को ही बताया है।

१२. **गीता:-** में श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को उपदेश देते हुए बताया कि वेदों में ओ३म् मैं हूँ, अर्थात् परमात्मा जिसका नाम ओ३म् है से सब प्रकट हुआ है।

१३. **पतंजलि:-** ऋषि का सूत्र है कि अर्थ के साथ ओ३म् का जप करना स्वाध्याय है (योग दर्शन १.२८ तजनस्तदर्थभावनम्) और उसके जप से आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार होता है और योग मार्ग में आने वाले सब विघ्नों -उपविघ्नों का नाश होता है (योग १.२९)

१४. **पाणिनि ऋषि:** ने अपने दो सूत्रों में यह विधान किया है कि वेदमन्त्रों के प्रारम्भ व अन्त में ओ३म् बोला जाए तो उसे प्लुत ही बोलना चाहिए। ओ३म् के अतिरिक्त अन्य प्रभु के नाम नहीं बोलने चाहिएं।

१५. **गोपथ ब्राह्मण:** अ, उ, म को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव का वाचक बताया है अर्थात् उत्पत्ति, पालन-पोषण और प्रलय करने वाला।

१६. **कोषकार :-** अ,उ,म, ब्रह्मा विष्णु, रुद्र को मानते हैं।

१७. **शंकराचार्य:-** ने कहा है कि ओ३म् को सबके हृदय में बसने वाला ईश्वर जानो। उस सर्वव्यापक का भजन करके बुद्धिमान शोकादि में नहीं पड़ता।

१८. **अन्य मतमतान्तरों में :-** भी ओ३म् की महिमा और ओ३म् का परिवर्तित नाम विद्यमान हैं। मुसलमानों का आमीन, यहूदियों का एमन, सिक्खों का एक ओंकार, अंग्रेजों का Omnipresent, Omnipotent, Omniscient । सम्पूर्ण विश्व में ही नहीं, सम्पूर्ण ब्राह्मण्ड में ओ३म् शब्द की महिमा है। विपत्ति में, मृत्यु में, ध्यान के अन्तिम क्षणों में बस ओ३म् ही शेष रह जाता है, शेष सब मन्त्र, ज्ञान-विज्ञान धूमिल हो जाता है। पौराणिकों की मूर्तियों व

मन्दिरों के ऊपर ओ३म, आरती में ओ३म्, नवजात शिशु के मुख में ओ३म्, सब स्थानों में ओ३म् ही ओ३म् है।

इसी ओ३म् की महिमा उपनिषदों ने इस प्रकार गाई है:-

* **इशोपनिषद-वृहददारण्यक :-** ओ३म् क्रतो स्मर अर्थात् हे क्रियाशील जीव ! तू ओ३म् का स्मरण कर।
* **केन उपनिषद-** उमा ने इन्द्रादि को ब्रह्मा का पता दिया। ओ३म् का स्त्रीलिंग रूप उमा है। उ और म के पीछे आ लगा दिया गया है। उमा के जाप से ही इन्द्रादि को ब्रह्म से साक्षात्कार हुआ।
* **कठोपनिषद-** यमाचार्य ने नचिकेता को ब्रह्म ज्ञान देते हुए कहा कि समस्त वेद जिस 'अक्षर' की घोषणा करते हैं, जो समस्त तपों का लक्ष्य है, जिसको पाने के लिए ऋषि मुनि ब्रह्मचर्य करते हैं- वह अक्षर ओ३म् है।
* **प्रश्नोपनिषद्-** में सत्यकाम अपने गुरु से पूछता है कि मृत्यु काल तक निरन्तर प्रणव (ओ३म्) का ध्यान करने से क्या गति होती है? गुरु ने उत्तर दिया जो पर है, 'अपर है वह ओंकार ब्रह्मा ही है अर्थात् उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।
* **मुंडकोपनिषद-** 'प्रणव धनु शरः हि आत्माः' अर्थात् उपासना में प्रणव धनुष का काम करता है और आत्मा शर (तीर) का काम करती है अर्थात् प्रणव (ओ३म्) के जाप रूपी धनुष पर यदि आत्मा तीर चढ़ाया जाए तो आत्मा सीधे परमात्मा को जा मिलता है। उपनिषद् का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है ओ३म् **इति एतद् अक्षरम्-** यह सब संसार उसी ओ३म् की छोटी सी व्याख्या है- इदं सर्व तस्य उपवयाख्यानाम्।
* **श्वेताश्वतर:-** अपने शरीर को नीचे की अरणि (समिधा) समझकर प्रणव को ऊपर की अरणि समझकर दोनों को ध्यान की रगड़ से मथें तो छिपी हुई ब्रह्माग्नि प्रकट होती है वह परमात्मा जिस अक्षर में अधिष्ठित है वह अक्षर ओ३म् है, जिन मात्राओं में अधिष्ठित है वे मात्राऐं अ, उ, म हैं।
* **अनन्त नाम :-** ओ३म् के गुण कर्म, स्वभाव अनुसार अनन्त नाम हैं इन नामों से अज्ञानी लोगों ने मूर्तियाँ बनाकर पूजना प्रारम्भ कर दिया जो निश्चित ही ईश्वर की ओर से दण्डित होते रहते हैं जब विदेशी आक्रमणकारी अथवा चोर डाकू इन पर आक्रमण करते हैं, उठा ले जाते हैं तो यह तथाकथित भगवान की मूर्तियाँ कुछ भी नहीं कर सकती। इस अन्ध परम्परा ने करोड़ों लोगों को भ्रमित कर रखा है। पूजा का वास्तविक अर्थ होता है- ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना और प्रातः सायं न्यून से न्यून दो घन्टा उसके स्वरूप का चिन्तन करना अथवा ओ३म् का अर्थ सहित जप करना। ईश्वर को जितना विस्तार से जाने उतनी प्रीति बढ़ती है इसी उद्देश्य से ऋषि दयानन्द ने ओ३म् के कुछ नामों का वर्णन किया है जैसे:-
* सत्यं, ज्ञान, अनन्तं, ब्रह्म (तैतिरियोपनिषद्)
* बह्मा, विष्णु, गणेश, शिव शंकर, महादेव, अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु, बृहस्पति, राजा, न्यायाधीश
* भगवान्, परमेश्वर, ईश्वर, परमात्मा, आत्मा, यज्ञ
* यमराज, देवी लक्ष्मी, सरस्वती, निरंजन, नारायण
* माता, पिता, पितामह, प्रपितामह, आचार्य, गुरु, धर्मराज
* शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निर्गुण, सगुण, मित्र, बन्धु, प्रिय, कवि
* मंगल, बुद्ध, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु, शक्ति, श्री होता, चन्द्र
* पृथ्वी, जल, वायु, आकाश
* मनु, विशवम्भर, शेष, आप्त, अन्तर्यामी, कूटस्थ
* दिव्य, सुपर्ण, गुरुत्मान, अर्यमा, वरुण, उपक्रम, सविता, कुवेर, पृथिवी, जल
* सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्ता, मोक्षदाता।
* **अव-धातु अर्थानुसार :** रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम, प्रवेश, श्रवण, सामर्थ्य, याचन, इच्छाक्रिया, इच्छित, दीप्ति, तृप्ति, आलिंगन, हिंसा, दान, योग वृद्धि आदि।

मन को ईश्वर चिन्तन में लगाने का एक सरल उपाय यह भी है कि ईश्वर के नामों का अर्थ सहित चिन्तन प्रारम्भ कर दें। तत्पश्चात् ओ३म् आनन्दस्वरूप को ही चिन्तन करें अर्थात् जप करें। जप में मुख्यतः तीन काम करने होते हैं, ओ३म् का उच्चारण, अर्थ और ईश्वर समर्पण। जो व्यक्ति दिन भर भीतर ही भीतर ओ३म् का जप करता रहता है उसकी आत्मा ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान से रहित हो ईश्वर की कृपा का पात्र बन जाती है।

बस ओ३म्, इक ओ३म् ....

आओ, आओ मेरे संग
आओ नाचो मेरे संग
आओ, गाओ मेरे संग
बस ओ३म्, इक ओ३म् ......

छँटते-छँटते छँट गये बादल, जो सूरज पर आये थे
सच हम तुमसे दूर रहे जब तक बड़ा पछताये थे
अब तो एक ही नाद से गूँजे, मेरा हर रोम,
बस ओ३म्, इक ओ३म् ....

जीवन देने-लेने वाला तू है तुझसे प्यार करूँ
अब चाहे मैं ध्यान में उतरूँ या जग का व्यवहार करूँ
अब तो एक ही नाद से गूँजे, मेरा हर रोम
बस ओ३म्, इक ओ३म् .....

तन मन का हर सुख तो हमने, इस जग में बहुत पाया
लेकिन अंतर का आनन्द तो, तुझमें मिटकर ही आया
अब तो एक ही नाद से गूँजे मेरा हर रोम
बस ओ३म्, इक ओ३म् ....

मृत्यु से बचने का ढंग

राजसिंह भल्ला

अरा इव रथनाभौ कला: यस्मिन् प्रतिष्ठिता:।
त वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्यु: पव्यिथा इति।

प्रश्नो. ६-६

रथ की धुरी में अरो की भांति जिस ईश्वर में सब कलाएं ठहरी हुई हैं। उस जानने योग्य पुरुष को तुम जानो जिससे मृत्यु तुमको पीड़ित न करे।

उसे देखने का ढंग

न चक्षुसा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्दे वैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञान प्रासदेन विशुद्ध सत्त्वस्ततस्तु
तं पश्यते निष्कलं ध्यायमान: ।।

मुण्डक. ३-१-८

अन्त:करण में दीखने वाला वह ईश्वर आंख से नहीं ग्रहण किया जाता है। वह न अन्य इन्द्रियों से जाना जाता है-वह इन्द्रियों का विषय नहीं हैं न ही तप से और न कर्मों से जाना जाता है। परन्तु यथार्थ ज्ञान की निर्मलता से, पवित्र बुद्धि युक्त होकर मनुष्य तदनन्तर भगवान् का ध्यान करता हुआ उस निराकर को देखता है।

तत्व ज्ञान प्राप्ति का ढंग

यावन्न चित्तोपशमो तावत् तववेदनम न ।
यावन्न वासनानाशस्तावत् तत्त्वागम: कुत:।।
यावन्न तत्त्व संप्राप्तिनं तावद्वासनाक्षय:।।।

अन्नपूर्णो. ५-८०

जब तक चित्त शान्त नहीं होता तब तक तत्त्व ज्ञान नहीं होता, क्योंकि वासनाएं (संस्कार) इसे शान्त होकर बैठने नहीं देती जब तक वासनाओं- संस्कारों का नाश नहीं होता तब तक आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष भी नहीं होता। ये वासनाएं-संस्कार ही जन्म-मरण के हेतु बने हुए हैं। तत्त्व ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का सही ढंग है।

मुक्ति का केवल साधन

स ब्रह्मा स:शिवा, स इन्द्र: सोऽक्षर:
परम: स्वराट् स एव विष्णु:
स: प्राण:, स कालोऽग्नि, स चन्द्रमा,
ए एव सर्वं यदमूते यच्च भाव्यम् सनातनम् ।।

केवल्यो ८.६

वह ईश्वर ही ब्रह्मा है। सबसे बड़ा है। सृष्टि रचना का निमित्त है। वही शिव है, कल्याणकारी है। संहारकर्ता है। वही इन्द्र है, प्रकाशमान है। वह अक्षर नाशरहित ब्रह्मा है स्वयं प्रकाशमान है। स्वयं सम्पूर्ण संसार में शासन करता है। सबको अपने अधिकार में चलाता है। वही विष्णु रुप में सबका पालक है पोषक है, रक्षक है। वह प्राण रुप हैं अन्तर्यामी होकर प्राण और जीवन का संचार करता है। अपनी चेतन सत्ता के द्वारा पदार्थों को गति प्रदान करता है। वही काल रूप अग्नि है, मृत्यु में भी व्याप्त होकर विद्यमान है। वह ईश्वर ही चन्द्रमा के समान प्रकाशमान है। प्रत्येक प्राणी को प्रकाश प्रदान करता है। वह ईश्वर भूत वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों में वर्तमान है। काल रूप है। सनातन है। अनादि और अनन्त है। उसको जानकर मनुष्य मृत्यु को लांघ जाता है। उस पर विजय पा लेता है। मोक्ष प्राप्त कर लेता है। उस ज्ञानी को मौत का भय नहीं रहता इसके अतिरिक्त मुक्ति का दूसरा रास्ता नहीं।

आनन्द प्राप्ति का ढंग

समाधी निर्धूतमत्लस्य चेतसो निवेशतस्यात्मानि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयंतदन्त: करणेन गृह्यते।।

मैत्रेयी. ६-३४

जिस साधक के साधना के द्वारा अविद्या आदि मल नष्ट हो गये हैं। आत्मस्थ होकर जिसने परमात्मा में अपने चित्त को लगाया है। उसको परमात्मा के मेल से जो सुख होता है वाणी उसका बयान करने में असमर्थ है। यह वाणी का विषय नहीं है। क्यों कि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्त:करण से ग्रहण करता है। आत्मस्थ होकर चित्त को परमात्मा में लगाकर ही आनन्द प्राप्ति का ढंग है।

कर्मयोग ही मुक्ति का मार्ग है

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छेत समा:।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

ईशो. २

जगत में भगवान को बसा हुआ-सर्व व्यापक मानने वाला समर्पण रुप त्यागपूर्वक उपासक इस लोक में सौ वर्षों तक नित्य नैमित्तिक कर्मो को करता हुआ जीने की इच्छा करे-ब्रह्म ज्ञानो तत्त्ववेता कर्तव्य कर्मों का त्याग कभी न करें। परहित परोपकार पर सेवा आदि शुभ कृत्यों को करने के लिए ही जीना चाहिए। इस प्रकार कर्तव्य कर्म परायण तुझ कर्मयोग युक्त पुरुष में कर्म संस्कार का लेप नहीं लगता। भागवत कर्मों को करने वाला कर्मशील उपासक कर्म संस्कार से लिप्त नहीं होता इससे कर्मयोग से अलावा दूसरा मुक्ति का मार्ग नहीं है। मुक्ति का एक मात्र मार्ग आस्तिक भाव सहित कर्मयोग है। विश्व में भगवान को बसा हुआ जानने से शुभ कर्मों को करना, ईश्वर के चलाये चक्र को सुचालित रखने में योग देना है। ऐसे व्यक्ति के कर्म भागवत कर्म ही होते हैं। इस कारण ऐसा ज्ञानी कर्मयोगी कर्म संस्कारों के बन्धनों से निर्लिप्त ही रहता है।

आनन्दमय होने का ढंग

यदिदं किञ्च जगत्सर्व प्राण एति नि:सृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुर मृतास्ते भवन्ति।

कठो. १-६-२

जो कुछ यह सारा फैला हुआ जगत है वह प्राण रूप है। जीवन तथा सर्वाधार ब्रह्म में क्रियावान हो रहा है। वह ब्रह्म महान भय है। अटल नियम है और उठा हुआ बज्र है। न्यायशील है। जो व्यक्ति ब्रह्म को सबका जीवन नियन्ता और न्यायकारी जानते हैं वे अमृत हैं- आनन्दमय हो जाते हैं।

हनुमानादि बन्दर नहीं थे?

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वानर- वने भवं वानम्, राति (रा आदाने) गृहणाति ददाति वा। वानं वन सम्बन्धिनं फलादिकं गृहणाति ददाति वा-जो वन में उत्पन्न होने वाले फलादि खाता है वह वानर कहलाता है। वर्तमान में जंगलों व पहाड़ों में रहने और वहाँ पैदा होने वाले पदार्थों पर निर्वाह करने वाले 'गिरिजन' कहाते हैं। इसी प्रकार वनवासी और वानप्रस्थ वानर वर्ग में गिने जा सकते हैं। वानर शब्द से किसी योनि विशेष, जाति, प्रजाति अथवा उपजाति का बोध नहीं होता।

जिसके द्वारा जाति एवं जाति के चिह्नों को प्रकट किया जाता है, वह आकृति है। प्राणिदेह के अवयवों की नियत रचना जाति का चिह्न होती है। सुग्रीव, बालि आदि के जो चित्र देखने में आते हैं उनमें उनके पूँछ लगी दिखाई जाती है, परन्तु उनकी स्त्रियों के पूँछ नहीं होती। नर-मादा में इस प्रकार का भेद अन्य किसी वर्ग में देखने में नहीं आता। इसलिए पूंछ के कारण हनुमान आदि को बन्दर नहीं माना जा सकता।

हनुमान से रामचन्द्र जी की पहली बार भेंट ऋष्यमूक पर्वत पर हुई थी। दोनों में परस्पर बातचीत के बाद रामचन्द्र जी लक्ष्मण से बोले-

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिण:।
नासामवेदविदुष: शक्यमेवं प्रभाषितुम्।।
नूनं व्याकरणं कृत्समनेन बहुधा श्रुतम्।
बहुव्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्।।
संस्कारक्रमसंपन्नामद्रु तामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम्।। कि. ३/२८,२९,३२

ऋग्वेद के अध्ययन से अनभिज्ञ और यजुर्वेद का जिसको बोध नहीं है तथा जिसने सामवेद का अध्ययन नहीं किया है, वह व्यक्ति इस प्रकार परिष्कृत बाते नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अभ्यास किया है, क्योंकि इतने समय तक बोलने में इन्होंने किसी भी अशुद्ध शब्द का उच्चारण नहीं किया है। संस्कारसंपन्न, शास्त्रीय पद्धति से उच्चारण की हुई इनकी कल्याणी वाणी हृदय को हर्षित कर रही है।

वस्तुत: हनुमान अनेक भाषाविद् थे। वह अवसर के अनुकूल भाषा का व्यवहार करते थे, इसका संकेत हमें सुन्दर काण्ड में मिलता है। लंका में पहुंच कर हनुमान ने सीता को अशोक वाटिका में राक्षसियों के बीच बैठे देखा। वृक्षों की शाखाओं के बीच छुपकर बैठे हनुमान सोचने लगे-

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।
सेयमालोक्य में रूपं जानकी भाषितं तथा।
रक्षोमिस्त्रासिता पूर्व भूयस्त्रासं गमिष्यति।।
ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनिस्विनी।
जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम्।। सुन्दर ३०/१८,२०

यदि द्विजाति (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) के समान परिमर्जित संस्कृत भाषा का प्रयोग करूंगा तो सीता मुझे रावण समझकर भय से संत्रस्त हो जाएगी। मेरे इस वनवासी रूप को देखकर तथा नागरिक संस्कृत को सुनकर पहले ही राक्षसों से डरी हुई यह सीता और भयभीत हो जाएगी। मुझको कामरूपी रावण समझ कर भयातुर विशालाक्षी सीता कोलाहल आरम्भ कर देगी। इसलिए-

अहं, त्वतितनुश्चैव वानरश्च विशेषत:।
वाचं चोदहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ।।१७

मैं सामान्य नागरिक के समान परिमार्जित भाषा का प्रयोग करूँगा। इससे प्रतीत होता है कि लंका की सामान्य भाषा संस्कृत थी, जबकि जनसाधारण संस्कृत से भिन्न, किन्तु तत्सम अथवा तद्भव, शब्दों का व्यवहार करते थे। कुछ टीकाकारों के अनुसार हनुमान ने अयोध्या के आस-पास की भाषा से काम लिया था।

बालिपुत्र अंगद के विषय में वाल्मीकि ने लिखा है-

बुद्धया ह्यष्टाङ्गयायुक्तं चतुर्बलसमन्वितम्।
चतुर्दशगुणं मेने हनुमान् बालिन: सुतम् ।। कि. ५४/२

हनुमान् बालिपुत्र अंगद को अष्टाङ्ग बुद्धि से संपन्न, चार प्रकार के बल से युक्त और राजनीति के चौदह गुणों से युक्त मानते थे।

अष्टांग बुद्धि-

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊपापोहार्थ विज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणा:।।

सुनने की इच्छा, सुनना, सुनकर धारण करना, ऊहापोह करना, अर्थ या तात्पर्य को ठीक-ठीक समझना, विज्ञान व तत्त्वज्ञान-बुद्धि के ये आठ अंग है।

चतुर्बल-साम, दाम, भेद, दण्ड। शत्रु को वश में करने के लिए नीतिशास्त्र में चार उपाय बताए गए हैं, उन्हीं को यहाँ चार प्रकार का बल कहा गया है। किन्हीं-किन्हीं के मत से बाहुबल, मनोबल, उपाय बल और बन्धुबल- ये चार बल हैं।

चतुर्दश गुण-

देशकालज्ञता दार्ढ्यं, सर्व क्लशसहिष्णुता,
सर्वविज्ञानता दाक्ष्यमूर्ज: संवृत्तमन्त्रता।
अविसंवादिता शौर्यं भक्तिज्ञत्वं कृतज्ञता,
शरणागतवात्सल्यममर्षित्वमचापलम्।।

१. देशकाल का ज्ञान, २. दृढ़ता, ३. कष्टसहिष्णुता, ४ सर्वविज्ञानता, ५. दत्तता, ६. उत्साह, ७. मन्त्रगुप्ति, ८. एकवाक्यता, ९. शूरता, १०. भक्ति ज्ञान, ११. कृतज्ञता, १२, शरणागतवत्सलता, १३. अमर्षित्व=अधर्म के प्रति क्रोध और १४. अचपलता=गम्भीरता।

और बालि की पत्नी एवं अंगद की माता तारा को वाल्मीकिने 'मन्त्रवित्' बताया है (कि. १६/१२)। मरते समय बालि ने तारा की योग्यता का बखान करते हुए सुग्रीव को परामर्श दिया-

सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये।
औत्पातिके च विविधे सर्वत: परिनिष्ठिता।।
यदेषा साध्विति ब्रूयात् कार्यं तन्मुक्तसंशयम्।
न हि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते।। कि. २३/१३-१४

सुषेण (जिनकी चिकिप्सा से मृतप्राय लक्ष्मण जीवित हो गए थे- संजीवनी वाले वैद्य) की पुत्री यह तारा सूक्ष्म विषयों के निर्णय करने तथा नाना प्रकार के उत्पातों के चिह्नों को समझने में सर्वथा निपुण है। जिस कार्य को यह अच्छा बताए, उसे नि:संग होकर करना। तारा की किसी सम्मति का परिणाम अन्यथा नहीं होता।

बालि की अन्त्येष्टि के समय सुग्रीव ने आज्ञा दी- ''और्ध्वदेहिकमार्यस्य क्रियतामनुकूलत:'' (कि. २५/३०)- मेरे ज्येष्ठ बन्धु आर्य का संस्कार राजकीय नियम के अनुसार शास्त्रानुकूल किया जाए।

तदनन्तर सुग्रीव के राजतिलक के समय सोलह सुन्दर 'कन्याएँ' अक्षत, अंगराज, गोरोचन, मधु, घृत आदि लेकर आई और वेदी पर प्रज्वलित अग्नि में- ''मन्त्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदोजना:'' (२६/१०) मन्त्रोच्चारणपूर्वक हविष्य के द्वारा मन्त्रविद् विद्वानों ने हवन किया।

इस सारे वर्णन और विवरण को बुद्धिपूर्वक पढ़ने के बाद कौन मान सकता है कि हनुमान् और तारा आदि मनुष्य न होकर पेड़ों पर उछल-कूद मचानेवाले बन्दर-बन्दरिया थे?

वैशाख २०७० (मे २०१४)
Post Date : 25-05-2014
MH/MR/N/136/MBI/-13-15
MAHRIL 06007/31/12/2015-TC
पोष्ट आफिस : सांताक्रुज (प.)
आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र
संपादक : संगीत आर्य
मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटींग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड), सान्ताक्रुज (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५/२२९३१५१८

प्रति, ____________

____

____

टिकट

रन फोर विजडम

महर्षि दयानन्द सरस्वती की जयन्ती के अवसर पर श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास द्वारा आयोजित **''रन फोर विजडम''** का आयोजन किया गया। उक्त दौड़ दूध तलाई से प्रारंभ हुई और नवलखा महल पर समाप्त हुई। शहर के विभिन्न विद्यालयों के लगभग ९०० विद्यार्थी एवं आर्यसमाज के १०० परिजनों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। दौड को ग्रामीण विधायक श्री फूल चन्द मीणा, राजीवगांधी जनजातीय विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान टी.सी. डामोर साहब एवं न्यास के कार्यकारी अध्यक्ष श्री अशोक आर्य द्वारा हरी झण्डी दिखाकर प्रारंभ किया गया। ग्रामीण विधायक श्री फूलचन्द मीणा ने अपने उद्‌बोधन में हर बालक को शिक्षा प्रदान कराना हम सबका प्रथम कर्तव्य बताया। उन्होंने कहा कि कोई भी बालक शिक्षा से वंचित नहीं रहना चाहिये। साथ ही महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं को अपनाते हुए अंधविश्वास व पाखण्ड को समाज से पूर्ण रुप से हटाने की आवश्यकता पर बल दिया। कार्यक्रम के मुख्य संयोजक डॉ. अमृत लाल तापडिया ने रैली के उद्देश्य के बारे में बताया। संयोजक श्री संजय शांडिल्य ने विस्तृत दिशा निर्देश प्रदान किये।

दौड़ के समापन पर सभी प्रतिभागी नवलखा महल के बाहर एकत्र हुए। समूह को न्यास के कार्यकारी अध्यक्ष श्री अशोक आर्य द्वारा संबोधित करते हुए महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं एवं निर्देशों से अवगत कराया गया। श्री आर्य ने सृष्टि के नियम को सत्य व असत्य का निर्धारण का आधार बताया। साथ ही बच्चों को पाखण्ड व अंधविश्वास से सर्वथा दूर रहने हेतु विस्तार से निर्देशित किया। नवलखा महल व न्यास द्वारा नियमित रुप से किये जाने वाले विभिन्न आयोजनों के बारे में बताया एवं नवलखा महल में निर्मित चित्र दीर्घा के अवलोकन हेतु प्रेरित किया। इस अवसर पर प्रत्येक प्रतिभागी को एक किट प्रदान की गई जिसमें अल्पाहार के साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती की जीवनी एवं नवलखा महल एक परिचय आदि पुस्तकों का समावेश रहा। अंत में न्यास के मंत्री श्री भवानीदास आर्य द्वारा धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

(सुरेश चन्द पाटोदी)

-: योग साधको के लिए :-

यदि आप अपनी उन्नति चाहते हैं तो निम्न से बचें

१) अंडा, मांस, मछली जैसे अखाद्य पदार्थो से परहेज करें।
२) शराब, बीड़ी, सिंगरेट, तुर्ती, भाँग, गाँजा, हिरोइन, ब्राउन सुगर व गुटका जैसे नशों से बचे।
३) छोटी-बडी किसी भी प्रकार की लाटरी व जुआ से दूर रहें।
४) पर-स्त्री या पर-पुरूष से वासनात्मक न बनावें।

महात्मा राजेन्द्र योगी, मो. ९४५०१५९९७४
वैदिक योग साधनाश्रम, खुटहाँ, पटिहटा, मीरजापूर

गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा) में प्रवेश प्रारम्भ

योगिराज भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली एवं युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की दीक्षास्थली पवित्र ब्रज भूमि मथुरा में प्रखर राष्ट्रभक्त महाराजा श्री महेन्द्र प्रताप द्वारा प्रदत्त सुविस्तृत भूखण्ड में स्थित श्रद्धेय नारायण स्वामी जी की तपस्थली गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में प्रवेश प्रारम्भ हो चुके हैं। प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त ही विद्यार्थी को कक्षा ६ एवं ७ में योग्यता अनुसार प्रवेश दिया जा सकता है अथवा जिस विद्यार्थी को अन्य विषयों के साथ-साथ अष्टाध्यायी न्यूनतम ४ अध्याय कण्ठस्थ होगी, वह विद्यार्थी प्रवेश परीक्षा के उत्तीर्ण होने पर कक्षा ८ में भी प्रवेश पा सकता है।

गुरुकुल में प्राच्या व्याकरण के साथ-साथ अन्य सभी विषयों का गहनता से अध्ययन कराया जाता है। अत: विद्यार्थी का मेधावी होना आवश्यक है, इसलिए अभिभावक मेधावी, सुशील विद्यार्थी को ही प्रवेशार्थ लायें।

गुरुकुलीय परिवेश पूर्णत: वैदिक संस्कारों से परिपूर्ण है, इसके साथ ही भोजन, आवास एवं अध्ययनादि की व्यवस्था भी अति उत्तम है, आर्यजन इसका लाभ उठाकर अपनी संतानों को शिक्षित, सक्षम, संस्कारवान एवं चरित्रवान् राष्ट्रभक्त तथा ऋषिभक्त बनाकर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

बालक ब्रह्मचर्य व्रतधारें, धर्म कर्म भरपूर करें।
ब्रह्म-विवेक-प्रकाश पसारें, मोह महातम दूर करें।।
युक्ति प्रमाण-तर्क पटुता से, भ्रम को चकनाचूर करें।
पन्थ न पकड़े मतवालों के, साधु स्वभाव न क्रूर करें।
सरल सुलक्षण संतानों को, संयमशील सुजान करो।
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या बल धन दान करो।।

आचार्य हरिप्रकाश
प्राचार्य
(९४५७३ ३३४२५ / ९८३७६ ४३४५८)